संत साहित्य में पर्यावरण विमर्श एवं जाम्भाणी साहित्य

डॉ. पुष्पा विश्नोई

सहायक आचार्य (हिन्दी)
राजकीय महाविद्यालय
बावड़ी (जोधपुर)

हिन्दी शब्दकोश के अनुसार 'विमर्श' शब्द का अर्थ है – किसी बात का विवेचन या विचार, आलोचना, समीक्षा, परीक्षा, परामर्श। विमर्श शब्द अत्यन्त व्यापक है जिसकी उत्पत्ति मृश धातु में वि–उपसर्ग तथा घञ् प्रत्यय लगाकर हुई है। अतः विमर्श शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ विचार–विमर्श सोचना, समझना, आलोचना करना आदि है। विमर्श का कोशगत अर्थ है– चिंतन, उलट–पुलट, कतरब्योंत, चर्चा, जाँच, परख, तर्कानुतर्क, पक्ष–विपक्ष, परीक्षा, सोच–विचार, सोच–समझ, परामर्श, विचारण आदि। नालन्दा विशाल सागर में विमर्श को, ''किसी बात का विचार या विवेचन, आलोचना, समीक्षा, परखने का काम, परामर्श, सलाह, अधीरता, असंतोष के अर्थ में लिया गया है। मानक अंग्रेजी–हिन्दी कोश में– 'डेलीबरेट' का अर्थ, 'सुचिन्तित' जानबूझ कर किया गया, इरादे के साथ विचारपूर्वक सोद्देश्य निश्चित और सुचिन्तित बताए गए हैं अर्थात विमर्श का अर्थ– सलाह करना, बहस करना, विचार–विमर्श, सलाह–मंत्रणा आदि है। डॉ. रोहिणी अग्रवाल के अनुसार– विमर्श का अर्थ है– जीवंत बहस। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोष से न देखकर, भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धता का समाहार करते हुए उलट–पुलट कर देखना, उसे समग्रता में समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय सन्दर्भ में निष्कर्ष – प्राप्ति की चेष्टा करना आदि।

वैसे तो वर्तमान युग विमर्शों का युग है लेकिन समकालीन साहित्य इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरण विमर्श, आदिवासी, दलित एवं स्त्री विमर्श में पर्यावरण विमर्श एक प्रमुख विषय के रूप में पत्र–पत्रिकाओं, शोध ग्रन्थों, सेमिनारों व व्याख्यानों के माध्यम से सर्वाधिक चर्चा में है। विमर्श का सामान्य अर्थ चर्चा एवं जीवन्त बहस है, परन्तु वर्तमान में यह विश्व में पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रचलित है।

पर्यावरण विस्तृत अर्थ वाला शब्द है। पर्यावरण का तथ्य तः अर्थ मात्र किसी व्यक्ति से, उसके परिवेश न होकर, समाज के राष्ट्र के और इस वसुधा, जिस पर हम वास करते हैं, जीवनयापन करते है तथा जो अपनी समग्रता में, व्यक्ति समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्रों को प्रभावित करने में सक्षम है, से है। दूसरे शब्दों में पर्यावरण की व्यापकता, पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं नद–नदियों, उत्तुंग गिरी शिखरों–पहाड़ों या मात्र किसी तन्त्र विशेष तक न होकर, उस सम्पूर्ण तथ्यपरक वास्तविकता से है, जिस पर हमारा समस्त आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास आश्रित है।[1] भारतीय संस्कृति में पर्यावरण के संरक्षण को बहुत महत्व दिया गया है। यहाँ मानव जीवन को हमेशा मूर्त या अमूर्त रूप में पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नदी, वृक्ष एवं पशु–पक्षी आदि के साहचर्य में ही देखा गया है। पर्यावरण शब्द का अर्थ है– हमारे चारों ओर का आवरण। पर्यावरण संरक्षण का तात्पर्य है कि हम अपने चारों ओर के आवरण को संरक्षित करें तथा उसे अनुकूल बनाए।

प्रकृति के प्रति लगाव, अनुराग तथा उसके संरक्षण में भारतीय संस्कृति का अनूठा योगदान रहा है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति को अरण्य संस्कृति कहा गया है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता वनों से ही शुभारम्भ होती है। यहाँ तक अरण्य में लिखे जाने के कारण ग्रन्थ विशेष आरण्यक कहलाए। भारतीय संस्कृति में वृक्षों की महिमा का जितना वर्णन मिलता है, वह अन्य देशों की संस्कृति में नहीं मिलता है।

भारतीय संस्कति में वृक्ष मानव के स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के प्रमुख घटक के रूप में माने जाते है। वनस्पति सदियों से भारतीय चिकित्सा–पद्धति आयुर्वेद का आधार रही है। पर्यावरण का मूल स्रोत ही वनस्पति है। वृक्षों के इन्हीं गुणों एवं उपयोगिता के कारण उन्हें देवत्व का स्थान मिला। भारतीय संस्कृति में वृक्षों की देन के कारण इन्हें देव समान पूजनीय माना गया है। वेदों में वृक्षों को पृथ्वी की संतति कहकर इन्हें अत्यधिक महत्व एवं आदर प्रदान किया गया है। लेकिन ज्यों–ज्यों मानव सभ्यता का विकास हुआ, वह प्रकृति से दूर होने लगा। मनुष्य बस्ती, गाँव एवं शहरों का निर्माण कर उनमें निवास करने लगा। धीरे–धीरे मनुष्य पर्यावरण की उपेक्षा करने लगा। वृक्षों को अपने उपयोग हेतु काम लेता रहा परन्तु नवीन वृक्षों को नहीं लगाया। मनुष्य प्रकृति का शोषण करने लगा। मध्यकाल में संत साहित्य सं. 1508 में मरूधरा में एक महापुरुष का अवतरण हुआ जिनका नाम था– गुरु जाम्भोजी।[2] उन्होंने मरू स्थल को रोकने, अकाल का समाधान करने तथा प्राणी मात्र के जीवन को सुरक्षित रखने हेतु आज से करीब 525 वर्ष पूर्व **विश्नोई पंथ**[3] की स्थापना की तथा जन–जन में पर्यावरण संरक्षण की अलख जगाई।

गुरु जाम्भोजी की जितनी महत्ता अध्यात्म एवं सामाजिक चेतना के संबंध में है, उससे कहीं अधिक पर्यावरण चेतना के संबंध में है। गुरु जाम्भोजी के सामाजिक चिन्तन की परिधि अत्यंत व्यापक रही है। उन्होंने सामान्य जन में सामाजिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक जागृति के साथ आर्थिक व पर्यावरण चेतना का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मध्यकालीन विषम परिस्थितियों से जूझ रहे नितान्त सरल एवं भोले–भाले लोगों के बहुमुखी विकास हेतु, उन्होंने अपना समस्त जीवन लगा दिया। उनका उद्देश्य जन–सामान्य में संपूर्ण एवं दीर्घकालीन परिवर्तन लाना था तथा इस हेतु व्यक्ति के प्रत्येक पहलू व लोक चेतना के व्यापक आयाम तक स्पर्श करना आवश्यक था। तत्समय में भी आज की भाँति प्रकृति के प्रति मानवीय अनुदारता चरम पर थी। गुरु जाम्भोजी ने अपनी दूरदर्शिता की क्षमता का परिचय देते हुए प्रकृति, प्राणी तथा पर्यावरण की महत्ता से जनता को परिचित कराया। पर्यावरण का संबंध धर्म से जोड़कर उसे बल प्रदान किया।

मध्यकाल की इस भोली–भाली, अशिक्षित जनता में चेतना के संचार का क्रांतिकारी कार्य गुरु जाम्भोजी ने किया। अकाल की स्थिति में यहाँ के लोग अपने जीवन तथा पशुओं की रक्षा हेतु इस सूखी रसा के ढूंठ पेड़ों को भी नहीं छोड़ता था। तब जाम्भोजी ने ऐसे लोगों को अपना गुरुत्व प्रदान करते हुए पेड़ों एवं प्रकृति की रक्षा तथा प्राणी मात्र की सुरक्षा का संदेश दिया। उन्होनें 29 नियमों की आचार–संहिता में दो नियम प्राकृतिक संतुलन हेतु दिए, **'जीव दया पाळणी अर रूंख ळीलो नहीं घावै।**[4] यद्यपि उनके समय पर्यावरण प्रदूषण, ओजोन परत में छिद्र तथा ग्लोबल वार्मिंग जैसी कोई समस्या नहीं थी, फिर अकाल एवं अभाव की समस्या तो थी ही। उन्होंने तभी भांप लिया था कि मानव के विकास एवं उसके अस्तित्व के लिए प्रकृति के विभिन्न घटकां का परस्पर संतुलन आवश्यक है। प्रकृति के तीन प्रमुख घटक है– मानव, वनस्पति एवं मानवेत्तर जीव–जन्तु। इनमें मानव ही चिन्तनशील, बुद्धिमान एवं सामर्थ्यवान है। अन्य दोनों घटकों का अस्तित्व मानव की इच्छा पर निर्भर है। लेकिन मानव स्वयं भी तभी सुरक्षित है, जब तक वनस्पति एवं जीव–जन्तु सुरक्षित हो। इन्हीं तथ्यों को समझने वाले गुरु जाम्भोजी अपने अनुयायियों को पर्यावरण सुरक्षा का मूल मंत्र दिया। गुरु जाम्भोजी ने लोगों की भाषा में तथा उनकी बुद्धि के अनुरूप उपमानों का प्रयोग करते हुए समझाया, उनके द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं को लोगों ने हृदयंगम कर लिया। पंथ के अनुयायियों हेतु अहिंसा तथा पर्यावरण संबन्धी नियम मात्र सैद्धान्तिक नहीं है, अपितु व्यावहारिक है। आज भी उनके आचरण में विद्यमान है। पर्यावरण संरक्षण एवं जीव दया के नियम की पालना में सैकड़ों विश्नोइयों ने प्राणों की आहुति दी है। विश्नोई पंथ ने पर्यावरण की सुरक्षा हेतु जाम्भोजी द्वारा प्रज्ज्वलित यज्ञ में अपने प्राणों रूपी समिधा देकर निरन्तर प्रकाशवान रखा है। इस यज्ञ की सबसे बड़ी आहुति विश्व प्रसिद्ध खेजड़ली बलिदान है, जो कि जाम्भाणी साहित्य में **'खेजड़ली के खडाणे'**[5] के नाम से प्रसिद्ध है। वि. सं. 1787 की भादवा सुदी दशमी तक जोधपुर निकटवर्ती ग्राम खेजड़ली में वृक्षों की रक्षा करते हुए 363 विश्नोई स्त्री–पुरुषों ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। आज भी यह विश्व की एक मात्र वृक्षों के निमित्त होने वाली सबसे अधिक लोमहर्षक घटना है। विश्व पटल पर विश्नोई पंथ ने अपने पर्यावरण प्रेम एवं जीवरक्षा हेतु मिसाल कायम की है।

खेजड़ली बलिदान की नेत्री श्रीमती अमृता देवी का उद्घोष **'सिर साटे रूंख रहे तो भी सस्तो जाण'** आज भी पर्यावरण प्रेमियों की प्रेरणा को द्विगुणित करता है। धन्य है, वह पंथ एवं पंथ के प्रवर्तक, जिनके अनुयायी कहते हैं– अगर हमारे शीश कटने पर भी वृक्ष की रक्षा हो जाये, तो भी इस सौदे को सस्ता समझना चाहिए।

वर्तमान में 'ग्लोबल वार्मिंग' पर्यावरणीय असंतुलन तथा वन्य जीवों की घटती संख्या जैसी ज्वलन्त समस्याओं का निराकरण सम्पूर्ण विश्व के वैज्ञानिक एवं पर्यावरण प्रेमी भी आज वही बता रहे है, जो कि जाम्भोजी ने अपनी वाणी में पाँच शताब्दी पूर्व ही प्रतिपादित कर दिये थे।
गुरू जाम्भोजी ने 'जम्भवाणी' में वृक्षों का महत्त्व बताया है। जाम्भोजी ने कहा– **"मोरै धरती ध्यांन वणासपति वासौ"**[6]
अर्थात यह सम्पूर्ण पृथ्वी मेरे ध्यान में तथा मेरा निवास वनस्पति में है। वनस्पति को काटना, वनस्पति पर प्रहार करना अर्थात साक्षात् गुरु जाम्भोजी पर प्रहार करना है। विश्नोई पंथानुयायियों ने वनस्पति की रक्षा के नियम का अक्षरशः पालन किया है क्योंकि वनस्पति में ही जाम्भोजी का वास है।

यह हैरत और अफसोस की ही बात है कि जिस देश में, समाज में पेड़–पौधों को पूजने की प्रथा रही है, अब उसी देश में, उसी समाज में पेड़ कम हो रहे हैं। बदलते दौर के साथ लोगों का प्रकृति से रिश्ता टूटने लगा। बढ़ती आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए वृक्षों को काटा जा रहा है। नतीजतन जंगल खत्म हो रहे हैं। अब जनमानस में पर्यावरण के प्रति जागरूकता आ रही है। लोग अब पेड़–पौधों की अहमियत को समझने लगे हैं। जन सामान्य को जागरूकता के साथ ही यथार्थ धरातल पर कार्य करने की बहुत अधिक आवश्यकता है।
जांभाणी साहित्य में पर्यावरण को जीवन का अभिन्न अंग मानता है तथा वृक्षों को प्राणवान, उनके बिना जीवन की कल्पना भी संभव नहीं है। वे लोकदृष्टा व लोकसृष्टा थे। गुरु जी अपना निवास स्थान वृक्ष छांव तले बनाते हैं, वे अपनी वाणी में कहते हैं –

''हरी कंकहड़ी मंडप मैड़ी, जहां हमारा वासा।''[7]

लेकिन हमने अपने महलों एवं अत्याधुनिक अट्टालिकाओं के निर्माण एवं विलासिता पूर्ण जीवन–शैली को अंगीकार कर पर्यावरण को अपूरणीय क्षति पहुंचाई है।

जिन पंचमहाभूतों से सृष्टि की रचना हुई है, जिनसे हमारी रक्षा होती है, वे आज प्रदूषण की चरम सीमा पार कर चुके हैं। वर्तमान में धरती, वायु, जल, आकाश एवं प्रकाश आदि सभी प्रदूषित हो चुके हैं। जाम्भाणी साहित्य में पर्यावरण के पांच तत्वों का परस्पर समन्वय बताया गया है। **आकाश वायु तेज जल धरणी। तामा सकल सृष्टि की करणी।**[8] इन सब के प्रदूषण से निपटने व संतुलन में वृक्षों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

वातावरण में कार्बन डाइ ऑक्साइड की अधिकता, ऑक्सीजन की कमी, तापमान वृद्धि, अनावृष्टि, अतिवृष्टि तथा कोरोना जैसी वैश्विक महामारियों की ज्वलंत समस्याओं का एकमात्र समाधान वृक्षों की रक्षा ही है। वृक्षों की रक्षा के द्वारा ही प्राकृतिक संतुलन संभव है।

साहबरामजी कहते हैं– **''लीलै रूंख न घालो घाया।''**[9] वृक्ष मात्र हरियाली देने वाला ही नहीं अपितु अपनी बहुमूल्य संपदा के कारण जाम्भाणी साहित्य दर्शन में देवों का निवास स्थान बताया गया है– **''देव रहै नित वन के मांही। लीली लकड़ी तोड़ै नाहीं।''**[10]

व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त वृक्षों तथा इस पृथ्वी पर निर्भर है। अन्न, प्राणवायु ऑक्सीजन, वस्त्र निर्माण की मूल सामग्री, औषधि, मकान निर्माण सामग्री, पशु–पक्षियों के जीवन यापन, यहाँ तक लेखन हेतु कागज आदि सभी प्रकृति द्वारा ही प्रदत्त है। अर्थात् हमारी सभी मूलभूत आवश्यकताओं तथा भौतिक सुख–सुविधाओं की प्राप्ति का मूल स्रोत प्रकृति ही है। अतः सर्वत्र ईश्वर की विद्यमानता है, वैसे ही प्रकृति एवं पर्यावरण मनुष्य की आधारभूत आवश्यकता है।

जाम्भाणी कवि साहबरामजी कहते है कि पेड़–पेड़ में परमेश्वर के दर्शन होते हैं–

''जांडी औट ग्वाल जब जावै। पेड़ पेड़ परमेश्वर पावै।''[11]

जाम्भाणी साहित्य में वृक्षों को माता–पिता के सदृश्य माना गया है। मनुष्य, वृक्षों के पुत्र हैं। वृक्ष अपने अमृत तत्व से समस्त मानव–जाति एवं प्राणी जगत का पालन–पोषण करते हैं–

''रूंख हमारे मात पित, तुम्हरै काहा जु वैर।
इमृत पिया जो सरै, तो काहे पियो झैर।''[12]

''ताही पेड़ में इमृत धारा। लेव ही पोख पले जन सारा।''[13]

जाम्भाणी साहित्य में वृक्षों की रक्षा करना धर्म का मार्ग बताया गया है। इसी धर्म–पालन हेतु प्रत्येक विश्नोई वृक्षों की रक्षा हेतु संकल्प बद्ध हैं। आज यही संकल्प समूची मानव–जाति के लिए अपरिहार्य हो गया है।

'दया धर्म करह प्रितपाला। रूंख राय के सदा रूखाला।'[14]

पौराणिक आख्यानों को आधार बनाकर प्रकृति के मूल तत्व 'वृक्ष' को न काटने की बात वील्होजी बार–बार दोहराते हैं, क्योंकि वे प्रकृति को ब्रह्म सदृश स्वीकार करते हैं–

''वृक्ष आदि स्थावर सब सृष्टि, ब्रह्म रूप यह जान समष्टि।''[15]

वील्होजी के अनुसार हरे वृक्षों को काटना पाप की शुरुआत है–

''रूखं विरख रोपावै थंभ, पाप तणौ मांडै आरंभ।''[16]

तथा निर्दयी होकर हरे वृक्षों को काटने वाला अंततः नरक में जाता है– **''दयाहीण काटी वणराय, जीव असंख दह्या दुंहलाय।''**[17]

वृक्ष पर्यावरण को शुद्ध रखने में सहायक है तथा वर्षा कारक भी है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि वृक्ष भी प्राणवान है। अतः उनको काटना भी एक तरह की हिंसा है। वील्होजी के अनुसार यह हरे वृक्षों को काटने का ही परिणाम पाप है। हरे वृक्षों को काटने का कृत्य कुंभीपाक नरक में ले जाने वाला है–

''रूंखां तणी नै पाळै दया, वाढ़े वनी कुंभी भैं पया।''[18]

जम्भसार के अनुसार जिस प्रकार हम विष्णु का नाम–स्मरण करते हुए अपने धर्म का पालन करते हैं, उसी प्रकार दया–भाव से प्रतिबद्ध होकर जीव, जंतु एवं वृक्षों की रक्षा करना भी धर्म का ही मार्ग है। इसी कारण विश्नोईयों को वृक्षों का रखवाला अर्थात् रक्षक घोषित किया गया है–

''विश्नुँ विश्नुँ नाम उचारै। जाणरु जीव जंत नहीं मारै।
दया धर्म करह प्रितपाला। रूंख राय के सदा रूखाला।''[19]

आज भी विश्नोई लोग पर्यावरणीय नियमों का दृढ़ता से पालन करते हैं तथा जलाने हेतु सदैव सूखी व स्वच्छ लकड़ी की ही प्रयोग करते हैं। थाट (भेड़, बकरी) अमर रखना तथा बैल को बधिया (नपुसंक) न करवाना आदि नियम भी जीव रक्षा और दया से प्रेरित हैं। माँस नहीं खाने का नियम भी पर्यावरण तथा जैविकी चक्र की सुरक्षा हेतु सार्थक है।

सन्दर्भ

1. चिन्तन – सृजन पत्रिका वर्ष 4 अंक पृ. 82
2. जांभोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य भाग 1 – डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 224
3. वही, पृ. 238
4. 29 नियम में नियम सं. – 19 एवं 20
5. साखी भावार्थ प्रकाश– स. कृष्णानंद आचार्य, पृ. 310–314
6. जाम्भोजी की सबदवाणी (मूल और टीका) – (सम्पा.) डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, सबद 27
7. सबदवाणी, सबद सं. 73
8. कलश मन्त्र
9. जम्भसार (भाग–1) – सम्पा. स्वामी कृष्णानन्दजी आचार्य, प्रकाशक– स्वामी आत्मप्रकाश जिज्ञासु, द्वितीय संस्करण 2002, पृ. 98
10. वही, पृ. 103
11. वही, पृ. 73
12. जम्भसार (भाग–2) – सम्पा. स्वामी कृष्णानन्दजी आचार्य, प्रकाशक– स्वामी आत्मप्रकाश जिज्ञासु, द्वितीय संस्करण 2002, पृ. 241
13. जम्भसार (भाग–1) – सम्पा. स्वामी कृष्णानन्दजी आचार्य, प्रकाशक– स्वामी आत्मप्रकाश जिज्ञासु, द्वितीय संस्करण 2002, पृ. 156
14. जम्भसार (भाग–2) – सम्पा. स्वामी कृष्णानन्दजी आचार्य, प्रकाशक– स्वामी आत्मप्रकाश जिज्ञासु, द्वितीय संस्करण 2002, पृ. 76
15. जाम्भाणी साहित्य में प्रकृति सम्बन्धी मूल्य – रामस्वरूप (जम्भ ज्योति वर्ष 25, अंक 2, अक्टूबर 2016, पृ.स. 24)
16. वील्होजी की वाणी – डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, प्रकाशक – जाम्भाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, संस्करण तृतीय 2016, पृ. स. 46
17. वही, पृ. स. 50
18. वही, पृ. स. 67
19. जम्भसार (भाग–2) – सम्पा. स्वामी कृष्णानन्दजी आचार्य, प्रकाशक– स्वामी आत्मप्रकाश जिज्ञासु, द्वितीय संस्करण 2002, पृ. 76